[2012] 1 एस.सी.आर. 504

नंद कुमार वर्मा

बनाम

झारखंड राज्य और अन्य

(सिविल अपील संख्या 1458/2012)

फ़रवरी 01, 2012

[एच.एल. दत्तू और अनिल आर. दवे, 'जे 'जे]

सेवा कानून:

एक ही आरोपों पर लगातार विभागीय कार्यवाही - सामान्य सिद्धांतों के आधार पर, किसी विशेष कदाचार के आरोप के संबंध में केवल एक ही जांच हो सकती है और आमतौर पर नियम भी यही प्रावधान करते हैं - जब एक पूर्ण जांच कार्यवाही को तकनीकी आधार पर या प्रक्रियात्मक दुर्बलता के आधार पर सक्षम फोरम द्वारा अलग रखा जाता है, तो उसी आरोप पर नई कार्यवाही अनुमेय है - इस मामले में, उच्च न्यायालय, स्पष्टीकरण स्वीकार करने के बाद, बाद की विभागीय कार्यवाही शुरू करने का आदेश पारित करने के लिए आगे नहीं बढ़ सकता था - उन आरोपों पर दूसरी जांच करने का कोई औचित्य नहीं है, जिन्हें पहले हटा दिया गया था - भले ही दोहरे खतरे के सिद्धांत लागू नहीं होते हैं, लेकिन न्यायालय केवल अनुशासनात्मक कार्यवाही की अनुमति देता है, उत्पीड़न की नहीं - इस तरह की प्रथा की अनुमति देना लोक सेवा के हित में नहीं है - परिस्थितियों में, अधिकारी को निचले पद पर वापस करने का विवादित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है।

अनिवार्य सेवानिवृत्ति:

अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए राय का विषय संबंधित प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि है, लेकिन ऐसी संतुष्टि वैध सामग्री पर आधारित होनी चाहिए - न्यायालयों के लिए यह पता लगाना अनुमेय है कि कोई वैध सामग्री मौजूद है या नहीं, जिस पर प्रशासनिक प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि आधारित है - वर्तमान मामले में, वह सामग्री जिस पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का निर्णय आधारित था और न्यायिक अधिकारी द्वारा प्रस्तुत सामग्री यह दर्शाती है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रासंगिक सामग्रियों की समग्रता पर विचार नहीं किया गया या पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया - परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर्याप्त या प्रासंगिक सामग्री पर आधारित नहीं थी - मामले के इस दृष्टिकोण से, यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिकारी का सेवा रिकॉर्ड असंतोषजनक था जिससे सेवा से समय से पहले सेवानिवृत्ति की गारंटी दी जा सके - इसलिए, अधिकारी को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का कोई औचित्य नहीं था।

न्यायिक सेवा - वार्षिक गोपनीय टिप्पणी - **निर्णय:** संबंधित न्यायिक अधिकारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उद्देश्य से उसके कामकाज के बारे में तत्काल वरिष्ठ अधिकारी द्वारा की गई राय या टिप्पणी को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए - तत्काल वरिष्ठ अधिकारी को करीब से निरीक्षण, विश्लेषण, जांच करने और फिर उसके कामकाज, समग्र दक्षता और प्रतिष्ठा पर टिप्पणी करने के लिए बेहतर स्थिति में रखा जाता है - इस मामले में, जिला और सत्र न्यायाधीशों को न्यायिक अधिकारी के कामकाज को करीब से देखने का अवसर मिला, जिन्होंने हाल के दो वर्षों के एसीआर में उसके निपटान को छोड़कर उसके समग्र प्रदर्शन के बारे में अनुकूल रिपोर्ट दी है - उच्च न्यायालय द्वारा उक्त उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को बरकरार रखने का कोई औचित्य नहीं था।

उच्च न्यायालय के निरीक्षण न्यायाधीश ने अपने निरीक्षण के दौरान अपीलकर्ता, जो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में कार्यरत थे, द्वारा कुछ मामलों में जमानत देने में कुछ चूक और अनियमितताएं देखी। इसके अलावा, अपीलकर्ता ने धारा 302 आईपीसी (केस नंबर 90/93) के तहत दंडनीय अपराध के आरोपी को जमानत दी। अपीलकर्ता ने 7.5.1994 को

निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा पारित की गई आलोचनाओं के लिए और दूसरी बात, 21.12.1994 को केस नंबर 90/93 में जमानत देने के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा की गई प्रतिकूल टिप्पणियों के लिए अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। दोनों स्पष्टीकरण उच्च न्यायालय द्वारा विधिवत स्वीकार किए गए।

तत्पश्चात, उच्च न्यायालय की स्थायी समिति ने दिनांक 11.8.1995 की अपनी बैठक में अपीलकर्ता के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने का निर्देश दिया। अपीलकर्ता को दिनांक 13.12.1995 को 'आरोप पत्र' भेजा गया, जिसमें केस संख्या 90/93 में अंधाधुंध तरीके से जमानत देने से संबंधित दो आरोप थे। अपीलकर्ता ने अपने जवाब में दावा किया कि उक्त आरोपों पर उसका स्पष्टीकरण उच्च न्यायालय द्वारा पहले ही स्वीकार कर लिया गया है। हालांकि, उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गई और समाप्त कर दी गई। जांच अधिकारी ने रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया कि अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध हो गए हैं। उच्च न्यायालय की अनुशंसा पर कार्य करते हुए बिहार सरकार ने दिनांक 20.4.1998 को एक औपचारिक अधिसूचना जारी की, जिसमें अपीलकर्ता को सिविल जज, सीनियर डिवीजन के पद से मुंसिफ (सिविल जज, जूनियर डिवीजन) के निचले पद पर वापस कर दिया गया। बिहार राज्य के विभाजन पर अपीलकर्ता को झारखंड राज्य आवंटित किया गया और उसे उक्त राज्य में न्यायिक मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किया गया। झारखंड उच्च न्यायालय की पूर्ण अदालत की अनुशंसा पर राज्य सरकार ने दिनांक 17.7.2001 को अधिसूचना जारी कर अपीलकर्ता को अनिवार्य रूप से सेवा से सेवानिवृत्त कर दिया। दोनों आदेशों को चुनौती देने वाली रिट याचिकाओं को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया।

तत्काल अपील में अपीलकर्ता की ओर से तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय ने कारण बताओ नोटिस पर उसके स्पष्टीकरण को स्वीकार कर लिया है, अतः उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ नहीं की जा सकती।

अपील की अनुमति देते हुए, न्यायालय ने कहा

निर्णित 1.1 स्पष्टीकरण स्वीकार करने और अपीलकर्ता को इसकी सूचना देने के बाद, उच्च न्यायालय विभागीय कार्यवाही शुरू करने और अपीलकर्ता को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पद से मुंसिफ के पद पर वापस भेजने का आदेश पारित करने के लिए आगे नहीं बढ़ सकता था। सामान्य सिद्धांतों के अनुसार, किसी विशेष कदाचार के आरोप के संबंध में केवल एक ही जांच हो सकती है और यही नियम आमतौर पर प्रदान भी करते हैं। हालाँकि, जब एक पूर्ण जांच कार्यवाही को तकनीकी आधार पर या प्रक्रियात्मक दुर्बलता के आधार पर सक्षम मंच द्वारा अलग रखा जाता है, तो उसी आरोप पर नई कार्यवाही अनुमेय है। [पैरा 27] [518-ई-एच]।

1.2 वर्तमान मामले में, एक आरोप ज्ञापन जारी किया गया था और अपीलकर्ता को दिया गया था। आरोप ज्ञापन को पढ़ने से पता चलता है कि इसमें स्थायी समिति की कार्यवाही का कोई संदर्भ नहीं है। यह भी नहीं पाया गया कि पहले की कार्यवाही निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार पुनर्जीवित की गई थी या नहीं। वास्तव में, आरोप ज्ञापन प्राप्त होने के बाद, अपीलकर्ता ने अपने उत्तर कथन में जांच अधिकारी के ध्यान में लाया कि आरोपों के एक ही सेट पर पहले एक नोटिस जारी किया गया था और स्थायी समिति ने, उसके दिनांक 21.12.1994 के स्पष्टीकरण को स्वीकार करने के बाद, पूरी कार्यवाही को समाप्त कर दिया था और उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल द्वारा दिनांक 02.02.1995 के पत्र द्वारा उसे सूचित किया गया था। इसके बावजूद, जांच अधिकारी ने जांच कार्यवाही जारी रखी और उसे पूरा करने के बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया। इसलिए, इन परिस्थितियों में, उन्हीं आरोपों पर दूसरी जांच करने का कोई औचित्य नहीं है, जिन्हें पहले हटा दिया गया था। भले ही दोहरे खतरे का सिद्धांत लागू न हो, लेकिन कानून केवल अनुशासनात्मक कार्यवाही की अनुमति देता है, उत्पीड़न की नहीं। इस तरह की प्रथा की अनुमति देना लोक सेवा के हित में नहीं है। इन परिस्थितियों में, अपीलकर्ता को निचले पद पर वापस करने का विवादित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता। [पैरा 27] [518-एच; 519-ए-ई]

2.1 अब यह अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति का उद्देश्य निष्क्रिय और अयोग्य व्यक्तियों को हटाना है ताकि उच्च मानक की दक्षता और ईमानदारी बनाए रखी जा सके और न्यायिक सेवा को अशुद्धि से मुक्त रखा जा सके। [पैरा 28] [519-F-G]

बैकुंठ नाथ दास बनाम मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी 1992 (1) एससीआर 836 = (1992) 2 एससीसी 299; **मदन मोहन चौधरी बनाम बिहार राज्य 1999** (1) एससीआर 596 = (1999) 3 एससीसी 396 और रजिस्ट्रार, मद्रास उच्च न्यायालय बनाम आर राजैया 1988 (1) सप्प'। एससीआर 332 (1988) 3 एससीसी 211 - संदर्भित।

2.2 न्यायालय इस तथ्य से अवगत है कि सेवा से समयपूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश की न्यायिक समीक्षा की बहुत सीमित गुंजाइश है। जैसा कि इस न्यायालय ने राजिया के मामले में देखा, जब उच्च न्यायालय यह विचार करता है कि न्यायिक सेवा के किसी सदस्य के खिलाफ अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दिया जाना चाहिए, तो ऐसी सामग्री की पर्याप्तता या पर्याप्तता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है, जब तक कि सामग्री अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उद्देश्य से बिल्कुल अप्रासंगिक न हो। इसके अलावा, जब अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को न्यायालय में चुनौती दी जाती है, तो न्यायालय को यह जांचने का अधिकार है कि इस मुद्दे से संबंधित कोई आधार या सामग्री मौजूद है या नहीं। हालांकि, न्यायालय को उस सामग्री की पर्याप्तता की जांच नहीं करनी है जिस पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश आधारित है। [पैरा 30] [522-डी-एफ

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय बनाम ईश्वर चंद जैन **1999 (2) एस.सी.आर. 834 = (1999) 4 एससीसी 579 - संदर्भित।**

2.3 यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए राय का गठन संबंधित प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित है, लेकिन ऐसी संतुष्टि एक वैध सामग्री पर आधारित होनी चाहिए। न्यायालयों के लिए यह पता लगाना अनुमेय है कि क्या कोई वैध सामग्री मौजूद है या नहीं, जिस पर प्रशासनिक प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि

आधारित है। इस मामले में, उच्च न्यायालय ने चयनात्मक रिकॉर्ड के आधार पर निर्णय लिया है जिसमें सारांशित एसीआर शामिल हैं। कुछ विसंगति प्रतीत होती है। अपीलकर्ता ने एसीआर की प्रतियां प्रस्तुत की हैं जो उसने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत उच्च न्यायालय से प्राप्त की थीं और इन दोनों की तुलना सकारात्मक रूप से इंगित करेगी कि उच्च न्यायालय ने एसीआर की सामग्री को ईमानदारी से नहीं निकाला है। अनिवार्य सेवानिवृत्ति का निर्णय जिस सामग्री पर आधारित था, जैसा कि उच्च न्यायालय ने विवादित निर्णय में उद्धृत किया है, तथा अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत सामग्री से यह पता चलता है कि प्रासंगिक सामग्रियों की समग्रता पर विचार नहीं किया गया था या उच्च न्यायालय द्वारा पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया था। इससे केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है कि उच्च न्यायालय की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर्याप्त या प्रासंगिक सामग्री पर आधारित नहीं थी। मामले के इस दृष्टिकोण से, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता का सेवा रिकॉर्ड असंतोषजनक था, जिसके कारण उसे समय से पहले सेवा से सेवानिवृत्त किया जाना चाहिए। इसलिए, अपीलकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का कोई औचित्य नहीं था। [पैरा 32] [523-जी-एच; 524-ए-सी; 527-ए-डी]

स्वामी सरन सक्सेना वि. उत्तर प्रदेश राज्य, **(1980) I SCC 12 - संदर्भित**

2.4 इसके अलावा, जिला एवं सत्र न्यायाधीशों को अपीलकर्ता के कामकाज को करीब से देखने का अवसर मिला। उन्होंने वर्ष 1997-98 और 1998-95 की एसीआर में अपीलकर्ता के निपटान को छोड़कर उसके समग्र प्रदर्शन के बारे में अनुकूल रिपोर्ट दी थी। इसे देखते हुए, न्यायिक अधिकारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उद्देश्य से संबंधित उसके कामकाज के बारे में तत्काल वरिष्ठ अधिकारी द्वारा दी गई राय या टिप्पणी को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। तत्काल वरिष्ठ अधिकारी को करीब से देखने, विश्लेषण करने, जांच करने और फिर उसके कामकाज, समग्र दक्षता और प्रतिष्ठा पर टिप्पणी करने के लिए बेहतर स्थिति में रखा गया है। [पैरा 33] [526-बी-डी]

नवल सिंह वि. उत्तर प्रदेश राज्य **(2003) 8 एस.सी.सी. 117** का उल्लेख **किया गया है।**

3. उच्च न्यायालय द्वारा उसी उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को बरकरार रखने का कोई औचित्य नहीं था। तदनुसार, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को रद्द किया जाता है। चूंकि अपीलकर्ता सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है, इसलिए वह सी.जे.एम. के रूप में अपनी काल्पनिक पोस्टिंग की तारीख से सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवा से अपनी काल्पनिक सेवानिवृत्ति तक सभी मौद्रिक लाभों का हकदार है, जितना जल्दी हो सके। [पैरा 34] [526-एफ-जी]

केस लॉ संदर्भ

1992 (1) एस.सी.आर. 836	**संदर्भित**	**पैरा 28**
1999 (1) एस.सी.आर. 596	**संदर्भित**	**पैरा 29**
1988 (1) सप'। एस.सी.आर. 332	**संदर्भित**	**पैरा 29**
1999 (2) एस.सी.आर. 834	**संदर्भित**	**पैरा 31**

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 1458/2012.

झारखंड उच्च न्यायालय के रिट याचिका संख्या 2856/2002 और 1620/2003 में दिनांक 11.7.2006 के निर्णय एवं आदेश से

मनीष मोहन, आदित्य पी. सिंह (बिजन कुमार घोष के लिए), एन.एन. सिंह, कृष्णानंद पांडेय, अमरेन्द्र कुमार. चौबे, अक्षय शुक्ला, रतन कुमार चौधरी, ब्रह्मजीत मिश्रा उपस्थित पक्षों के लिए।

न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश दिया

आदेश

1. अनुमति दी गई।
2. यह अपील झारखंड उच्च न्यायालय, रांची द्वारा रिट याचिका संख्या 2856/2002 और रिट याचिका संख्या 1620/2003 दिनांक 11.07.2006 में पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध है। उक्त निर्णय और आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के विरुद्ध पारित प्रत्यावर्तन आदेश और अनिवार्य सेवानिवृत्ति आदेश को बरकरार रखा है।
3. सबसे पहले, हम यह कहना चाहते हैं कि न्यायिक अधिकारी इस संस्था का अभिन्न अंग हैं। उनका सम्मान किया जाना चाहिए और उनके करियर की सावधानीपूर्वक रक्षा की जानी चाहिए। लेकिन वर्तमान मामले में, रिकॉर्ड देखने के बाद हमें ऐसा लगता है कि अपीलकर्ता, जो न्यायिक अधिकारी के रूप में सेवा कर रहा था, के साथ उच्च न्यायालय द्वारा बहुत कम सम्मान के साथ व्यवहार किया गया है। चाहे जो भी हो।
4. अपीलकर्ता को वर्ष 1975 में बिहार अधीनस्थ न्यायिक सेवा में मुंसिफ (जिसे अब सिविल जज, जूनियर डिवीजन के रूप में जाना जाता है) के रूप में नियुक्त किया गया था और वर्ष 1980 में मुंसिफ के रूप में उनकी सेवाओं की पुष्टि की गई थी। इसके बाद, वर्ष 1986 में उन्हें सब-जज (सिविल जज, सीनियर डिवीजन) के पद पर पदोन्नत किया गया और 19.01.1988 से उसी पद पर उनकी पुष्टि की गई। वर्ष 1987 में अपीलकर्ता को सब-जज-सह-अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट बनाया गया। इसके बाद, नवंबर 1989 में उन्हें पटना उच्च न्यायालय द्वारा अधिसूचना दिनांक 5.11.1989 के तहत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में पदस्थापित किया गया। जब वे गोपालगंज में मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के रूप में कार्यरत थे, तब पोर्टफोलियो न्यायाधीश द्वारा एक निरीक्षण किया गया था और अपीलकर्ता द्वारा

कुछ मामलों में जमानत देने में कुछ चूक और कमीशन को देखते हुए, 09.03.1994 को किए गए नोट में उनके खिलाफ कुछ प्रतिकूल टिप्पणियां की गई थीं। इसके अलावा, अपीलकर्ता ने मोहम्मदपुर पुलिस स्टेशन कांड संख्या 90/93 में आईपीसी की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराधों के आरोपी एक व्यक्ति को जमानत देने के लिए 10.2.1994 को एक आदेश भी पारित किया था। इसे विद्वान जिला न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने आपराधिक विविध याचिका संख्या 11327/1994 का फैसला करते समय अपवाद के रूप में लिया था। पटना उच्च न्यायालय ने सीआरपीसी विविध में दिनांक 12.09.1994 के आदेश के अनुसार संख्या 11327/1994 ने अपीलकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणी करते हुए यह टिप्पणी की थी कि अपीलकर्ता ने उक्त मामले में अनावश्यक विचार के आधार पर जमानत प्रदान की थी तथा आगे निर्देश दिया था कि मामले को आवश्यक कार्रवाई के लिए उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

5. उपरोक्त प्रतिकूल टिप्पणियों के मद्देनजर, जो अपीलकर्ता के खिलाफ पारित की गई थीं, उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें अपनी स्पष्टीकरण देने का निर्देश दिया गया। इस संबंध में, अपीलकर्ता ने सबसे पहले 7.5.1994 को निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा पारित कड़े निर्देशों के लिए और दूसरी बार 21.12.1994 को उच्च न्यायालय द्वारा 12.09.1994 को क्रि. मि. सं. 11327/1994 में की गई प्रतिकूल टिप्पणियों के लिए अपनी स्पष्टीकरण प्रस्तुत की थी।

6. 7.5.1994 को प्रस्तुत किया गया स्पष्टीकरण 17.11.1994 को उच्च न्यायालय की स्थायी समिति के समक्ष रखा गया। इस स्पष्टीकरण के संबंध में स्थायी समिति ने अपीलकर्ता से निरीक्षण न्यायाधीश के विरुद्ध आपत्तिजनक भाषा का प्रयोग करने के लिए स्पष्टीकरण मांगा तथा उसे अगली बैठक में उपस्थित होने का निर्देश दिया।

7. तदनुसार, अपीलकर्ता 1.12.1994 और 2.12.1994 को उपस्थित हुआ और उसने तुरंत कहा कि वह स्पष्टीकरण में प्रयुक्त अभद्र भाषा के लिए क्षमाप्रार्थी है। स्थायी समिति ने अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत बिना शर्त माफी स्वीकार करते हुए उसकी

गलतियों को माफ कर दिया और उसे गोपालगंज से समस्तीपुर स्थानांतरित कर दिया।

8. अपीलकर्ता के मामले पर स्थायी समिति द्वारा दिनांक 3. 2. 1995 की बैठक में 16 उप-न्यायाधीशों के बीच उप-न्यायाधीश से अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के पद पर पदोन्नति के लिए भी विचार किया गया था, लेकिन उसके खिलाफ जांच कार्यवाही लंबित होने के कारण इसे स्थगित कर दिया गया था।

9. अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 21.12.1994 को दिए गए दूसरे स्पष्टीकरण में उन्होंने जघन्य अपराधों के मामलों में भी अंधाधुंध तरीके से जमानत दिए जाने के आरोपों का विशेष रूप से उल्लेख किया था। उक्त स्पष्टीकरण को अतिरिक्त एजेंडे के रूप में दिनांक 5.1.1995 की बैठक में उच्च न्यायालय की स्थायी समिति के समक्ष विचारार्थ रखा गया था, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा विधिवत स्वीकार कर लिया गया था। तत्पश्चात, उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल द्वारा दिनांक 1.2.1995 के अपने आदेश के माध्यम से अपीलकर्ता को इसकी सूचना दी गई।

10. प्रस्तुत स्पष्टीकरण स्वीकार करने के पश्चात भी उच्च न्यायालय का यह विचार था कि न्यायिक अधिकारी को शांति से नहीं छोड़ा जाना चाहिए। अतः हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय की स्थायी समिति ने दिनांक 11.08.1995 की अपनी बैठक में अपीलकर्ता के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने का निर्देश दिया था। तदनुसार अपीलकर्ता को दिनांक 13.12.1995 को दो आरोपों से युक्त आरोप पत्र तामील किया गया तथा एक माह के भीतर कारण बताओ नोटिस भी दिया गया। दोनों आरोप अपीलकर्ता द्वारा मोहम्मदपुर थाना कांड संख्या 90/93 में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में अपने कार्यों का निर्वहन करते समय बिना सोचे समझे जमानत देने से संबंधित हैं। कारण बताओ नोटिस के अनुसरण में अपीलकर्ता ने दिनांक 16.01.1996 को विस्तृत उत्तर दिया था कि उक्त आरोपों पर उसका स्पष्टीकरण उच्च न्यायालय द्वारा पहले ही स्वीकार कर लिया गया है। हालांकि, उच्च न्यायालय ने जिला न्यायाधीश, समस्तीपुर के माध्यम से अपीलकर्ता को आरोपों

के आधार पर उसके खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू करने के लिए दिनांक 03.04.1996 को नोटिस दिया था। अपीलकर्ता ने दिनांक 11.06.1996 और 22.06.1996 को अपना जवाबी बयान पेश किया था, जिसमें उसने स्पष्ट रूप से तर्क दिया था कि आरोपों के उसी सेट पर, उसने पहले ही 21.12.1994 को अपना स्पष्टीकरण पेश किया था और इसे माननीय मुख्य न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के अन्य विद्वान न्यायाधीशों की स्थायी समिति के समक्ष इसकी दिनांक 5.1.1995 की बैठक में रखा गया था और जिसमें उन्होंने उसका स्पष्टीकरण स्वीकार कर लिया था। लेकिन प्रस्तुत स्पष्टीकरण को जांच अधिकारी ने स्वीकार नहीं किया, इसलिए, उसने जांच कार्यवाही जारी रखी।

11. गवाहों के साक्ष्य और उनके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों को दर्ज करने के बाद, जांच अधिकारी ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी अर्थात् उच्च न्यायालय को 19.07.1996 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। जांच रिपोर्ट में, जांच अधिकारी का मानना था कि अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए दोनों आरोप सभी उचित संदेह से परे साबित हुए हैं।

12. जांच अधिकारी की रिपोर्ट के आधार पर, अनुशासनिक प्राधिकारी अर्थात उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को अपने प्रशासनिक क्षेत्राधिकार में सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का निर्णय लिया और उच्च न्यायालय द्वारा की गई अनुशंसा पर कार्य करते हुए, कार्मिक विभाग, बिहार सरकार द्वारा दिनांक 20.04.1998 को एक औपचारिक अधिसूचना जारी की गई, जिसमें अपीलकर्ता को उप-न्यायाधीश (सिविल जज, वरिष्ठ डिवीजन) के पद से मुंसिफ (सिविल जज, जूनियर डिवीजन) के निचले पद पर वापस कर दिया गया।

13. उक्त आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिका (एस) संख्या 547/1999 में इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था।

14. इस न्यायालय ने याचिका स्वीकार करते हुए प्रतिवादियों को नोटिस जारी किया था।

15. इस स्तर पर, एक और तथ्य जिस पर हमारा ध्यान जाना आवश्यक है, वह यह है कि उक्त रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, मई, 2001 में, बिहार राज्य के विभाजन के कारण, अपीलकर्ता को झारखंड राज्य आवंटित किया गया था और 21.04.2001 के आदेश के तहत कोडरमा में न्यायिक दंडाधिकारी (प्रथम श्रेणी) के रूप में पदस्थापित किया गया था। तदनुसार, अपीलकर्ता ने 5.5.2001 को नई व्यवस्था के तहत अपनी सेवाएं शुरू की थीं। न्यायिक दंडाधिकारी के रूप में कार्य करते हुए, झारखंड उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा की गई अनुशंसा पर, राज्य सरकार ने अपीलकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने की अधिसूचना दिनांक 17.07.2001 जारी की थी। उक्त आदेश अपीलकर्ता को 26.7.2001 को दिया गया था। यह निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता की वार्षिक चरित्र सूची/वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट (जिसे आगे "ए.सी.आर." कहा जाएगा) के आधार पर लिया गया, जो पिछली सेवा से संबंधित है, जिसमें सेवा की चुनिंदा अवधि की ए.सी.आर. शामिल है।

16. सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उक्त आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता ने रिट याचिका संख्या 5/2002 के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। हालांकि, इस न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 2एल6 के तहत वैकल्पिक उपाय का लाभ उठाने की स्वतंत्रता के साथ 18.01.2002 के आदेश के तहत डब्ल्यू.पी. संख्या 5/2002 को खारिज कर दिया। तदनुसार, अपीलकर्ता ने झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका संख्या 2856/2002 दायर की।

17. प्रतिवादियों ने रिट याचिका (सी) संख्या 547/1999 में इस न्यायालय के संज्ञान में लाया था कि अपीलकर्ता सेवानिवृत्त हो चुका है और इसलिए इस न्यायालय ने डब्ल्यू.पी.(सी) संख्या 547/1999 में लंबित कार्यवाही को विचारार्थ और निर्णय के लिए झारखंड उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया। स्थानांतरण पर, इसे उच्च

न्यायालय के समक्ष डब्ल्यू.पी. संख्या (एस) 1620/2003 के रूप में पंजीकृत किया गया।

18. उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में अपीलकर्ता द्वारा दायर दोनों रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया है। इस प्रकार अपीलकर्ता इस सिविल अपील में हमारे समक्ष है।

19. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि जिस आदेश के तहत अपीलकर्ता को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पद से मुंसिफ (सिविल जज, जूनियर डिवीजन) के पद पर वापस भेजा गया, वह मनमाना है और सेवा कानून न्यायशास्त्र के मानदंडों के विपरीत है और इसलिए कानून की दृष्टि से गलत है। अपने तर्क को विस्तार से बताते हुए, विद्वान वकील ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने आपराधिक विविध याचिका संख्या 10327/1994 में निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा की गई टिप्पणियों को स्पष्ट करने के लिए जारी किए गए कारण बताओ नोटिस पर उनके स्पष्टीकरण को स्वीकार कर लिया है, इसलिए अपीलकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती। विद्वान वकील ने तर्क दिया कि यह दोहरा खतरा होगा।

20. इसके विपरीत, प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने कहा कि स्थायी समिति ने अपीलकर्ता द्वारा इस्तेमाल की गई अभद्र भाषा के संबंध में ही स्पष्टीकरण स्वीकार किया था, न कि जघन्य अपराधों में भी आरोपी व्यक्तियों को जमानत/अस्थायी जमानत दिए जाने के आरोपों के संबंध में। इसलिए, उन्होंने कहा कि चार्ज मेमो में लगाए गए आरोपों के लिए अपीलकर्ता के खिलाफ विभागीय जांच कार्यवाही शुरू करने में उच्च न्यायालय का फैसला उचित था।

21. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने, जहाँ तक उसकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति का सवाल है, दलील दी है कि अपीलकर्ता की सेवाएँ समाप्त करते समय उच्च न्यायालय द्वारा जिन प्रतिकूल टिप्पणियों पर विचार किया गया था, उन्हें कभी नहीं बताया गया और दूसरी बात, वह दलील देंगे कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता की सेवा में प्रवेश की तिथि से लेकर उसकी सेवानिवृत्ति की तिथि तक की एसीआर पर विचार करने में चयनात्मकता बरती है। उन्होंने आगे दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने, विवादित

निर्णय में एसीआर में की गई प्रविष्टियों को दर्ज करते समय, रिकॉर्ड में मौजूद एसीआर की वास्तविक सामग्री का सही प्रतिबिंबन नहीं किया है। उस तर्क के समर्थन में, विद्वान वकील ने इन कार्यवाहियों में उच्च न्यायालय के समक्ष दायर अतिरिक्त हलफनामे की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

22. अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों के जवाब में, उच्च न्यायालय के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका में, उन्होंने स्पष्ट रूप से यह तर्क नहीं दिया था कि एसीआर में दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणियों के बारे में उन्हें सूचित नहीं किया गया था। अन्यथा भी, विद्वान वकील यह तर्क देंगे कि सेवा में रहते हुए अपीलकर्ता का संपूर्ण सेवा प्रोफ़ाइल बोर्ड से ऊपर नहीं था और इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के मामले में राज्य सरकार को सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए सिफारिश करना उचित था।

23. इस अपील में हमारे विचारणीय और निर्णयार्थ मुद्दे ये हैं: क्या उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 21.4.1998 को अपीलकर्ता को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पद से मुंसिफ (सिविल जज, जूनियर डिवीजन) के पद पर वापस करने का आदेश पारित करना न्यायोचित था; और क्या उच्च न्यायालय द्वारा जनहित में अपीलकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का आदेश पारित करना न्यायोचित था?

24. पहले मुद्दे का उत्तर देने के लिए, हमें आपराधिक विविध याचिका संख्या 11327/1994 में विद्वान निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा की गई टिप्पणियों पर ध्यान देना होगा। उसी का उद्धरण दिया गया है:--

> "वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर कहा गया है, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा जमानत देना स्वयं संहिता की धारा 437 में निहित वैधानिक प्रावधान के विरुद्ध था क्योंकि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि यह मानने के लिए उचित आधार था कि याचिकाकर्ता मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी है। जमानत देना स्वयं कानून में अनुमेय नहीं था और वस्तुतः मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपने

न्यायिक विवेक को किसी अन्य विचार के लिए आत्मसमर्पण कर दिया है।"

25. उक्त आपराधिक विविध याचिका में जारी कुछ निर्देशों के अनुसरण में, उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता से स्पष्टीकरण मांगा था। जारी किए गए निर्देश के अनुसरण में, अपीलकर्ता ने अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया था। उच्च न्यायालय की स्थायी समिति ने अपीलकर्ता को उसके समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया था। स्थायी समिति के समक्ष, अपीलकर्ता ने बिना शर्त माफी मांगी थी और इसे स्थायी समिति ने स्वीकार कर लिया था और स्थायी समिति ने अपनी टिप्पणी में कहा था कि अपीलकर्ता के खिलाफ मामला बंद कर दिया गया है और इसकी सूचना अपीलकर्ता को भी दे दी गई है।
26. एक अन्य स्पष्टीकरण के द्वारा अपीलकर्ता ने जमानत देने में अपनी कार्रवाई को उचित ठहराया था। उनके द्वारा प्रस्तुत इस स्पष्टीकरण को उच्च न्यायालय ने भी स्वीकार कर लिया था और उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल द्वारा अपीलकर्ता को इसकी जानकारी दी गई थी, जिसमें अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 21.12.1994 को दिए गए उत्तर में दिए गए स्पष्टीकरण का विशेष संदर्भ दिया गया है।
27. उनके स्पष्टीकरण को स्वीकार करने के बाद भी उच्च न्यायालय का यह मत था कि जघन्य अपराधों में भी अंधाधुंध तरीके से जमानत देने के लिए अपीलकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जानी चाहिए। अपीलकर्ता ने चार्ज मेमो का जवाब दिया और उसमें उसने विशेष रूप से तर्क दिया कि उच्च न्यायालय की स्थायी समिति ने स्पष्टीकरण स्वीकार करने के बाद उसे सूचित किया था कि उसका स्पष्टीकरण स्वीकार कर लिया गया है और उसके खिलाफ लगाए गए सभी आरोप बंद हो गए हैं। मामले के इस पहलू पर हालांकि जांच अधिकारी ने गौर किया, लेकिन उसने कोई निष्कर्ष नहीं दिया। हालांकि, उसने पाया कि अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप साबित होते हैं। इसके आधार पर उच्च न्यायालय ने वापसी का आदेश पारित किया जिसके तहत अपीलकर्ता को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पद से मुंसिफ

के पद पर वापस कर दिया गया और राज्य सरकार ने भी इसे अधिसूचित कर दिया। हमारी राय में, स्पष्टीकरण स्वीकार करने और अपीलकर्ता को इसकी सूचना देने के बाद, उच्च न्यायालय विभागीय कार्यवाही शुरू करने और अपीलकर्ता को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पद से मुंसिफ के पद पर वापस भेजने का आदेश पारित नहीं कर सकता था। सामान्य सिद्धांतों के अनुसार, किसी विशेष कदाचार के आरोप के संबंध में केवल एक ही जांच हो सकती है और यही नियम आमतौर पर प्रदान करते हैं। यदि किसी तकनीकी या अन्य अच्छे आधार, प्रक्रियात्मक या अन्यथा, के लिए पहली जांच या सजा या दोषमुक्ति कानून में गलत पाई जाती है, तो ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है कि दूसरी जांच शुरू नहीं की जा सकती। इसलिए, जब एक पूर्ण जांच कार्यवाही को तकनीकी या प्रक्रियात्मक दुर्बलता के आधार पर सक्षम मंच द्वारा अलग रखा जाता है, तो उसी आरोप पर नई कार्यवाही अनुमेय है। वर्तमान मामले में, एक आरोप ज्ञापन जारी किया गया था और अपीलकर्ता को दिया गया था। आरोप ज्ञापन को पढ़ने पर स्थायी समिति की कार्यवाही का कोई संदर्भ नहीं मिलता है। यह भी नहीं पाया गया कि पूर्व कार्यवाही निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार पुनः प्रारम्भ की गई है या नहीं। वस्तुतः आरोप ज्ञापन प्राप्त होने के पश्चात अपीलकर्ता ने अपने उत्तर कथन में जांच अधिकारी के ध्यान में लाया था कि उन्हीं आरोपों पर पूर्व में नोटिस जारी किया गया था तथा दिनांक 21.12.1994 को उनके स्पष्टीकरण प्राप्त होने के पश्चात स्थायी समिति ने उनके स्पष्टीकरण को स्वीकार करते हुए सम्पूर्ण कार्यवाही समाप्त कर दी थी तथा उच्च न्यायालय के महापंजीयक द्वारा दिनांक 02.02.1995 को उन्हें इसकी सूचना दी गई थी। प्रस्तुत उत्तर कथन में उनके स्पष्टीकरण के बावजूद जांच अधिकारी ने जांच कार्यवाही जारी रखी तथा कार्यवाही पूर्ण होने के पश्चात अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। अतः इन परिस्थितियों में उन्हीं आरोपों पर पुनः जांच करने का कोई औचित्य नहीं है जिन्हें पूर्व में समाप्त कर दिया गया है। भले ही दोहरे खतरे के सिद्धांत लागू न हों, लेकिन कानून केवल अनुशासनात्मक कार्यवाही

की अनुमति देता है, उत्पीड़न की नहीं। इस तरह की प्रथा की अनुमति देना सार्वजनिक सेवा के हित में नहीं है। ऐसी परिस्थिति में, हम अपीलकर्ता को निचले पद पर वापस करने के विवादित आदेश को बरकरार नहीं रख सकते।

28. अब हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित दूसरे आदेश पर विचार करते हैं, जिसमें अपीलकर्ता के मामले को राज्य सरकार को स्वीकार करने और अपीलकर्ता को न्यायिक सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने के लिए उचित अधिसूचना जारी करने की सिफारिश की गई है। यह अब अच्छी तरह से स्थापित है कि सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति का उद्देश्य दक्षता और ईमानदारी के उच्च मानक को बनाए रखने और न्यायिक सेवा को अदूषित रखने के लिए मृत लकड़ी को निकालना है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के विषय पर स्थापित कानून के आधार पर अपीलकर्ता के तर्क की सराहना की जानी चाहिए। बैकुंठ नाथ दास बनाम मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी, (1992) 2 एससीसी 299 में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने सार्वजनिक हित में अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के संबंध में सिद्धांत निर्धारित किए हैं:

> 34. उपरोक्त चर्चा से निम्नलिखित सिद्धांत उभर कर आते हैं:
>
> (i) अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश कोई सजा नहीं है। इसमें न तो कोई कलंक है और न ही किसी तरह के दुर्व्यवहार का संकेत।
>
> (ii) यह आदेश सरकार द्वारा यह राय बनाने के बाद पारित किया जाना चाहिए कि सरकारी कर्मचारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करना जनहित में है। यह आदेश सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर पारित किया जाता है।
>
> (iii) न्याय के प्राकृतिक सिद्धांतों का अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के संदर्भ में कोई स्थान नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायिक जांच पूरी तरह से बाहर रखी गई है। उच्च न्यायालय या यह न्यायालय

अपीलीय अदालत के रूप में मामले की जांच नहीं करेगा, लेकिन वे हस्तक्षेप कर सकते हैं यदि वे संतुष्ट हों कि आदेश (a) दुर्भावनापूर्ण है या (b) यह किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है या (c) यह मनमाना है -- इस अर्थ में कि दिए गए सामग्री पर कोई भी उचित व्यक्ति आवश्यक राय नहीं बना सकता था; संक्षेप में, यदि यह पाया जाता है कि यह एक विकृत आदेश है।।

(iv) सरकार (या समीक्षा समिति, जैसा भी मामला हो) को मामले में निर्णय लेने से पहले सेवा के पूरे रिकॉर्ड पर विचार करना होगा - बेशक बाद के वर्षों के दौरान रिकॉर्ड और प्रदर्शन को अधिक महत्व देते हुए। इस तरह से विचार किए जाने वाले रिकॉर्ड में स्वाभाविक रूप से गोपनीय रिकॉर्ड/चरित्र रोल में प्रविष्टियां शामिल होंगी, जो अनुकूल और प्रतिकूल दोनों हैं। यदि किसी सरकारी कर्मचारी को प्रतिकूल टिप्पणियों के बावजूद उच्च पद पर पदोन्नत किया जाता है, तो ऐसी टिप्पणियां अपना प्रभाव खो देती हैं, खासकर तब, जब पदोन्नति योग्यता (चयन) पर आधारित हो और वरिष्ठता पर नहीं।

(v) अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश केवल इस बात पर न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता है कि इसे पारित करते समय असंप्रेषित प्रतिकूल टिप्पणियों पर भी विचार किया गया था। वह परिस्थिति अपने आप में हस्तक्षेप का आधार नहीं हो सकती। हस्तक्षेप केवल ऊपर (iii) में उल्लिखित आधारों पर ही स्वीकार्य है। इस पहलू पर ऊपर पैरा 30 से 32 में चर्चा की गई है।

29. मदन मोहन चौधरी बनाम बिहार राज्य, (1999) 3 धारा 396 में, यह न्यायालय अपीलकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश पर विचार कर रहा था, जो बिहार राज्य में उच्च न्यायिक सेवा का सदस्य था। अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय में एक रिट

याचिका दायर की गई, जिसमें उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उसके आदेश को चुनौती दी गई, न्यायिक पक्ष से उच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया और याचिका को खारिज कर दिया। अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष अपील में आया। इस न्यायालय ने पाया कि यद्यपि विभिन्न पूर्व अवसरों पर उच्च न्यायालय द्वारा टिप्पणियाँ दी गई थीं, लेकिन वर्ष 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए अपीलकर्ता की चरित्र पंजिका में कोई प्रविष्टियाँ नहीं थीं। इन वर्षों की प्रविष्टियाँ एक साथ एक ही समय में दर्ज की गई थीं और अपीलकर्ता को 'सी' ग्रेड अधिकारी के रूप में वर्गीकृत किया गया था। जिस तारीख को ये प्रविष्टियाँ की गईं, वह न तो मूल अभिलेख में और न ही प्रतिवादी द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में दर्शाई गई थी। इन्हें अपीलकर्ता को 29-11-1996 को सूचित किया गया था और 30-11-1996 को पूर्ण न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। यह स्पष्ट था कि ये प्रविष्टियाँ उस समय दर्ज की गईं जब स्थायी समिति ने अपीलकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का मन बना लिया था क्योंकि इसने कार्यालय को 6-11-1996 को अपीलकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए एक नोट लगाने का निर्देश दिया था। इस न्यायालय ने माना कि यह ऐसा मामला था जहाँ कोई सामग्री नहीं थी जिसके आधार पर यह राय बनाई जा सकती थी कि अपीलकर्ता को समय से पहले सेवा से सेवानिवृत्त करना सार्वजनिक हित में होगा। इस न्यायालय का यह मत था कि तीन वर्षों अर्थात् 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए "एक बार में" दर्ज की गई प्रविष्टियों पर शायद ही विचार किया जा सकता था। न्यायालय ने इसके बाद रजिस्ट्रार, मद्रास उच्च न्यायालय बनाम आर. राजैया (1988) 3 एससीसी 211 में अपने पहले के निर्णय का हवाला दिया, जिसमें इस न्यायालय ने कहा था कि उच्च न्यायालय को अपने प्रशासनिक अधिकार क्षेत्र में न्यायिक सेवा के सदस्य की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करने का अधिकार है, जो उस संबंध में बनाए गए नियमों के अनुसार है, लेकिन वह मनमाने ढंग से काम नहीं कर सकता और अधिकारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का निर्णय लेने के लिए सामग्री होनी चाहिए। उस मामले में यह भी

बताया गया कि उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायिक अधिकारियों को न्यायिक आदेशों से संबंधित तुच्छ शिकायतों से परेशान या परेशान होने से बचाने के लिए मार्गदर्शन और संरक्षण देने के लिए संवैधानिक दायित्व के तहत है, ताकि अधिकारी अपने कर्तव्यों का ईमानदारी और स्वतंत्रता से निर्वहन बेईमान वकीलों और वादियों द्वारा की गई गलत या प्रेरित शिकायतों से बेपरवाह होकर कर सकें।

30. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि सेवा से समयपूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश की न्यायिक समीक्षा की बहुत सीमित गुंजाइश है। जैसा कि इस न्यायालय ने राजिया के मामले में (सुप्रा) में कहा है कि जब उच्च न्यायालय यह विचार करता है कि न्यायिक सेवा के किसी सदस्य के विरुद्ध अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दिया जाना चाहिए, तो ऐसी सामग्री की पर्याप्तता या पर्याप्तता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता, जब तक कि सामग्री अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उद्देश्य से पूरी तरह अप्रासंगिक न हो। हम यह भी कहते हैं कि जब अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को न्यायालय में चुनौती दी जाती है, तो न्यायालय को यह जांचने का अधिकार है कि इस मुद्दे से संबंधित कोई आधार या सामग्री मौजूद है या नहीं। हालांकि, न्यायालय उस सामग्री की पर्याप्तता में रुचि नहीं रखता है जिस पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश आधारित है।

31. इस न्यायालय ने पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय बनाम ईश्वर चंद जैन, (1999) 4 एससीसी 579 में निरीक्षण के दौरान की गई टिप्पणियों के उद्देश्य, महत्व और प्रभाव पर चर्चा की है जो अंततः संबंधित न्यायिक अधिकारी की एसीआर का हिस्सा बन जाती हैं। इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की है:

> 32. पिछले कुछ समय से यह न्यायालय न्यायिक अधिकारियों या उच्च न्यायालयों के इस न्यायालय में आने की आशंकाओं से ग्रस्त है, जब किसी न्यायिक अधिकारी को समय से पहले सेवानिवृत्त करने का आदेश होता है। संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों पर पूर्ण नियंत्रण रखता है, जिसमें

जिला न्यायालय भी शामिल हैं। अधीनस्थ न्यायालयों का निरीक्षण उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण के लिए किए जाने वाले सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। इस तरह के निरीक्षण का उद्देश्य अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा किए गए कार्य, उनकी क्षमता, ईमानदारी और योग्यता का आकलन करना है। चूंकि न्यायाधीश भी इंसान हैं और उनमें सभी मानवीय कमियों की संभावना होती है, इसलिए निरीक्षण गलतियों को इंगित करने का अवसर प्रदान करता है, ताकि भविष्य में उनसे बचा जा सके और अधीनस्थ न्यायालय के कामकाज में यदि कोई कमी हो, तो उसे दूर किया जा सके। निरीक्षण अधीनस्थ न्यायाधीशों को सर्वोत्तम परिणाम देने के लिए प्रेरित करने में उत्प्रेरक के रूप में कार्य करना चाहिए। उन्हें उपलब्धि की भावना महसूस होनी चाहिए। उन्हें प्रोत्साहन की आवश्यकता है। वे बहुत तनाव में काम करते हैं और बहुत असुविधा और कठिनाई के बीच काम करते हुए अदालतों का संचालन करते हैं। एक संतोषजनक न्यायिक प्रणाली काफी हद तक जमीनी स्तर पर अदालतों के संतोषजनक कामकाज पर निर्भर करती है। निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा दर्ज की गई टिप्पणियों को आम तौर पर पूर्ण न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया जाता है और वे वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट का हिस्सा बन जाती हैं और वे नींव होती हैं जिस पर न्यायिक अधिकारी का करियर बनता या बिगड़ता है। इसलिए अधीनस्थ न्यायालय का निरीक्षण बहुत महत्वपूर्ण है। इसे प्रभावी और उत्पादक दोनों होना चाहिए। ऐसा तभी हो सकता है जब यह अच्छी तरह से विनियमित हो और कामचलाऊ हो। अधीनस्थ न्यायालयों का निरीक्षण एक दिन, एक घंटे या कुछ मिनटों का मामला नहीं है। निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा न्यायालय के काम की निगरानी करके इसे पूरे साल चलना चाहिए। एक आकस्मिक निरीक्षण न्यायिक प्रणाली के लिए शायद ही फायदेमंद हो सकता है। यह अच्छे से ज्यादा नुकसान करता है।

32. यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए राय का निर्माण संबंधित प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित है, लेकिन ऐसी संतुष्टि एक

वैध सामग्री पर आधारित होनी चाहिए। न्यायालयों के लिए यह पता लगाना अनुमेय है कि क्या कोई वैध सामग्री मौजूद है या नहीं, जिस पर प्रशासनिक प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि आधारित है। वर्तमान मामले में, हम जो देखते हैं वह यह है कि उच्च न्यायालय ने यह मानते हुए कि अपीलकर्ता का ट्रैक रिकॉर्ड और सेवा रिकॉर्ड असंतोषजनक था, एसीआर की उन सामग्रियों के उद्धरण बनाते समय केवल कुछ वर्षों के सेवा रिकॉर्ड को ही ध्यान में रखा है। कुछ विसंगति प्रतीत होती है। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि अपीलकर्ता ने एसीआर की प्रतियां प्रस्तुत की हैं जो उसने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत उच्च न्यायालय से प्राप्त की थीं और इन दोनों की तुलना सकारात्मक रूप से इंगित करेगी कि उच्च न्यायालय ने एसीआर की सामग्री को ईमानदारी से नहीं निकाला है। उच्च न्यायालय ने यह निर्णय चुनिंदा सेवा रिकॉर्ड के आधार पर लिया है, जिसमें चयनित वर्षों के लिए संक्षिप्त एसीआर शामिल है, जैसा कि विवादित निर्णय में उद्धृत किया गया है। प्रारंभिक वर्षों 1975-76 और 1976-77 की एसीआर में उनके कार्य की गुणवत्ता में सुधार की संभावना बताई गई है, वर्ष 1982-83, 1983-84 की एसीआर में उनके कार्य को असंतोषजनक बताया गया है, वर्ष 1984-85, 1987-88 की एसीआर में उनके कार्य निष्पादन को असंतोषजनक, खराब प्रतिष्ठा और झगड़ालू प्रवृत्ति बताया गया है, तथा बाद के वर्षों 1993-94 और 1994-95 की एसीआर में कुछ निजी शिकायतों का उल्लेख है और कहा गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा उनकी शक्तियों को छीन लिया गया है, तथा हाल के वर्षों 1997-98 और 1998-99 की एसीआर में कहा गया है कि न्यायिक कार्य में कोई कमी नहीं है, लेकिन मामलों का निपटान खराब है। जबकि अपीलकर्ता ने कुछ सेवा अभिलेख प्रस्तुत किए हैं, जिनमें शामिल हैं: वर्ष 1985 में निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा दर्ज की गई एसीआर जिसमें अपीलकर्ता को "शुद्ध परिणाम" प्रविष्टि के विरुद्ध '8'-संतोषजनक माना गया है, इसके अलावा जिला एवं सत्र न्यायाधीश, समस्तीपुर द्वारा वर्ष 1997-98 के लिए तैयार की गई एसीआर में उसे औसत योग्यता वाला अधिकारी बताया गया है, जिसने बार, कर्मचारियों और सहकर्मियों के साथ अच्छे संबंध बनाए रखे हैं, लेकिन उसका निपटान

खराब है, और जिला एवं सत्र न्यायाधीश, मुजफ्फरपुर द्वारा वर्ष 1998-99 के लिए तैयार की गई एसीआर में उसे एक अच्छा अधिकारी बताया गया है, लेकिन उसका निपटान खराब है। हालांकि, इस अवधि के दौरान उसका खराब निपटान कुछ हद तक निरंतर और अनावश्यक अनुशासनात्मक कार्यवाही में उसकी भागीदारी की पृष्ठभूमि में उचित है, जो इस तथ्य के बाद भी अंधाधुंध तरीके से जमानत देने के आरोपों पर आधारित थी कि उसे वर्ष 1995 में इन आरोपों से बहुत पहले ही मुक्त कर दिया गया था। पटना उच्च न्यायालय द्वारा। अनिवार्य सेवानिवृत्ति का निर्णय जिस सामग्री पर आधारित था, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा आरोपित निर्णय में उद्धृत किया गया है; और अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत सामग्री दर्शाती है कि प्रासंगिक सामग्रियों की समग्रता पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया या पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया। इससे केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है कि उच्च न्यायालय की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर्याप्त या प्रासंगिक सामग्री पर आधारित नहीं थी। मामले के इस दृष्टिकोण से, हम यह नहीं कह सकते कि अपीलकर्ता का सेवा रिकॉर्ड असंतोषजनक था जो सेवा से समय से पहले सेवानिवृत्ति का वारंट होगा। इसलिए, अपीलकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का कोई औचित्य नहीं था। स्वामी सरन सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1980) 1 एससीसी 12 में, इस न्यायालय ने अपीलकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को, सार्वजनिक हित में, रद्द कर दिया है, जो उसके हालिया सेवा प्रदर्शन और रिकॉर्ड के साथ तीव्र विरोधाभास में पाया गया था। इस न्यायालय ने कहा:-

32. यह भी अच्छी तरह से तय है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए राय का गठन संबंधित प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर आधारित है, लेकिन इस तरह की संतुष्टि एक वैध सामग्री पर आधारित होनी चाहिए। न्यायालयों के लिए यह सुनिश्चित करने की अनुमति है कि क्या कोई वैध सामग्री मौजूद है या अन्यथा, जिस पर प्रशासनिक प्राधिकरण की एक व्यक्तिपरक संतुष्टि आधारित है। वर्तमान मामले में, हम जो देखते हैं वह यह है कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता का ट्रैक रिकॉर्ड और सेवा रिकॉर्ड असंतोषजनक था, एसीआर की सामग्री को के उद्धरण बनाते समय केवल कुछ वर्षों के

लिए सेवा रिकॉर्ड को चुनिंदा रूप से ध्यान में रखा है। कुछ विसंगति प्रतीत होती है। हम ऐसा इस कारण से कहते हैं कि अपीलकर्ता ने एसीआर की प्रतियां पेश की हैं जो सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत उच्च न्यायालय से उसके द्वारा प्राप्त की गई थीं और इन दोनों की तुलना सकारात्मक रूप से इंगित करेगी कि उच्च न्यायालय ने एसीआर की सामग्री को ईमानदारी से नहीं निकाला है। उच्च न्यायालय ने चयनात्मक सेवा के रिकार्ड के आधार पर निर्णय लिया है जिसमें चयनित वर्षों के लिए आक्षेपित निर्णय में यथा उद्धृत संक्षेप में एसीआर शामिल है। प्रारंभिक वर्षों के लिए एसीआर 1975-76 और 1976-77 ने उन्हें काम की गुणवत्ता के खिलाफ सुधार करने में सक्षम के रूप में टिप्पणी की, एसीआर के वर्षों के लिए: 1982-83, 1983-84 इंगित करता है कि उनका काम असंतोषजनक है, वर्ष के लिए एसीआर: 1984-85, 1987-88 खराब प्रतिष्ठा और झगड़ालू रवैये के साथ उनके कार्य प्रदर्शन को असंतोषजनक के रूप में टिप्पणी करते हैं, और बाद के वर्षों के लिए एसीआर: 1993-94 और 1994-95 कुछ निजी शिकायतों को संदर्भित करता है और टिप्पणी करता है कि हाल के वर्षों के लिए उच्च न्यायालय और एसीआर द्वारा उनकी शक्तियों को विभाजित किया गया था: 1997-98 और 1998-99 इंगित करता है कि न्यायिक कार्य में कोई दोष नहीं है लेकिन मामलों का निपटान खराब है। जबकि, अपीलकर्ता ने कुछ सेवा रिकॉर्ड प्रस्तुत किए जिनमें शामिल हैं: वर्ष एफ 1985 में निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा दर्ज एसीआर जो अपीलकर्ता को 'बी' के रूप में मूल्यांकन करता है - प्रविष्टि "शुद्ध परिणाम" के खिलाफ संतोषजनक है, इसके अलावा वर्ष 1997-98 के लिए जिला और सत्र न्यायाधीश, समस्तीपुर द्वारा तैयार की गई एसीआर ने उसे औसत योग्यता के अधिकारी के रूप में मूल्यांकन किया, बार के साथ अच्छे संबंध बनाए रखा, वर्ष 1998-99 के लिए जिला और सत्र न्यायाधीश, मुजफ्फरपुर द्वारा तैयार किए गए जी और एसीआर ने उन्हें एक अच्छे अधिकारी के रूप में मूल्यांकन किया, लेकिन खराब निपटान। तथापि, इस अवधि के दौरान उनका खराब निपटान कुछ हद तक न्यायोचित है क्योंकि वह निरंतर और अनावश्यक अनुशासनिक कार्यवाहियों में शामिल थे, जो इस

तथ्य के बाद भी कि उन्हें वर्ष 1995 में पटना उच्च न्यायालय द्वारा इन आरोपों से बहुत पहले बरी कर दिया गया था, अंधाधुंध जमानत दे दी गई। वह सामग्री जिस पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का निर्णय आधारित था, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय में निकाला गया था; और अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत सामग्री यह दर्शाएगी कि प्रासंगिक सामग्रियों की समग्रता पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया था या पूरी तरह से अनदेखा किया गया था। इससे एक निष्कर्ष निकलता है कि उच्च न्यायालय की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर्याप्त या प्रासंगिक सामग्री पर आधारित नहीं थी। इस मामले के मद्देनजर, हम यह नहीं कह सकते कि अपीलकर्ता का सेवा रिकॉर्ड असंतोषजनक था, जो सेवा से समय से पहले सेवानिवृत्ति का वारंट करेगा। इसलिए, अपीलकर्ता को अनिवार्य रूप से सेवा से सेवानिवृत्त करने का कोई औचित्य नहीं था। में **स्वामी सरन सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1980)** 1 एससीसी 12 के मामले में, इस न्यायालय ने जनहित में अपीलकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को रद्द कर दिया है, जो उनके हालिया सेवा प्रदर्शन और रिकॉर्ड के साथ तेज विरोधाभास में पाया गया था। इस न्यायालय ने देखा:

> 3. सामान्यतः न्यायालय इस बात पर संबंधित अधिकारी के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करता कि किसी सरकारी कर्मचारी को अनिवार्य सेवानिवृत्ति देना जनहित में है या नहीं। और हम इस निष्कर्ष पर पहुंचने में और भी अधिक अनिच्छुक रहे हैं, जब अनिवार्य सेवानिवृत्ति का विवादित आदेश स्वयं उच्च न्यायालय की संस्तुति पर दिया गया था। लेकिन हमारे सामने मौजूद सामग्री के आधार पर हम इस स्पष्ट विरोधाभास को समझने में असमर्थ हैं कि यद्यपि द्वितीय दक्षता बार को पार करने के उद्देश्य से अपीलकर्ता को विशिष्ट योग्यता और प्रश्न 1,1 से परे ईमानदारी के साथ काम करते हुए माना गया था, फिर भी उसके कुछ महीनों के भीतर उसे इतना अयोग्य पाया गया कि वह अनिवार्य सेवानिवृत्ति का हकदार है। अपीलकर्ता से संबंधित अभिलेखों में बीच की प्रविष्टियों की जांच की जानी चाहिए और उस संदर्भ में उनका मूल्यांकन किया जाना

चाहिए। ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे पता चले कि अपीलकर्ता के काम की गुणवत्ता या ईमानदारी में अचानक ऐसी गिरावट आई कि उसे अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया जाना चाहिए। इन सभी कारणों से, हमारा मत है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को रद्द किया जाना चाहिए। अपीलकर्ता को विवादित आदेश की तिथि पर सेवा में बने रहना माना जाएगा।

33. इसके अलावा, जिला एवं सत्र न्यायाधीश के पास अपीलकर्ता के कामकाज को करीब से देखने का अवसर है, जिन्होंने अपीलकर्ता के वर्ष 1997-9 और 1998-99 के हालिया एसीआर में अपीलकर्ता के निपटान को छोड़कर उसके समग्र प्रदर्शन के बारे में अनुकूल रिपोर्ट दी है। इसे देखते हुए, संबंधित न्यायिक अधिकारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उद्देश्य से उसके कामकाज के बारे में तत्काल वरिष्ठ अधिकारी द्वारा दी गई राय या टिप्पणी को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। तत्काल वरिष्ठ अधिकारी के पास करीब से निरीक्षण करने, विश्लेषण करने, जांच करने और फिर उसके कामकाज, समग्र दक्षता और प्रतिष्ठा पर टिप्पणी करने के लिए बेहतर स्थिति है। नवा/सिंह बनाम यूपी राज्य (2003) 8 एससीसी 117 में, इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की है:

> 12....वर्तमान प्रणाली में, उच्च अधिकारी की राय पर भरोसा किया जाना आवश्यक है, जिसके पास संबंधित अधिकारी के प्रदर्शन को करीब से देखने का अवसर था और संबंधित अधिकारी द्वारा प्राप्त समग्र प्रतिष्ठा के संबंध में उसकी राय का निर्माण आधार होगा।

34. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारा मत है कि उच्च न्यायालय द्वारा उसी उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को बरकरार रखना न्यायसंगत नहीं था। तदनुसार, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को रद्द करते हैं। चूंकि अपीलकर्ता सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है, इसलिए वह सीजेएम के रूप में अपनी काल्पनिक नियुक्ति की तारीख से सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवा से अपनी काल्पनिक सेवानिवृत्ति

तक सभी मौद्रिक लाभों का हकदार है, जितना संभव हो सके, किसी भी दर पर, इस आदेश की एक प्रति प्राप्त होने की तारीख से चार महीने के भीतर।

तदनुसार आदेश दिया।

आर. पी. **अपील की अनुमति दी।**

यह अनुवाद मधु कुमारी, पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया है।